Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 2 | ISSN : 2582-0095

भारतीय काव्यशास्त्र में रसविमर्श

नागदेव यादव

शोधच्छात्र,

हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय,

बोधगया, बिहार

शोध आलेख सार – रस के सम्पूर्ण विवेचन का आधार है भरत का नाट्यशास्त्र है। नाट्यशास्त्र का आधारभूत एक लघुत्तर संस्करण भी प्रारम्भ मे था– आज मूल और उसके विस्तार मे भेद करना सरल नही है, परन्तु उसके चिन्ह मिल ही जाते है । निष्कर्ष यह है कि रस सिद्धान्त का विस्तृत शास्त्रीय विवेचन मूल भरत सूत्रों मे ईसा के जन्म के एक दो शती इधर या उधर निश्चित रूप से हो चुका था।

मुख्य शब्द – रस, भरत, नाट्यशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र,अलंकार, अथर्ववेद।

रस सिद्धान्त का प्रतिपादक प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ नाट्य ाास्त्र है जो भरत मुनि की रचना के रूप मे प्रसिद्ध है। इसमे नाटक के संदर्भ में रस के अंग–उपांगो का पर्याप्त विस्तार से विवेचन किया गया है। विशे ाज्ञ विद्वानो का मत है कि अपने वर्तमान समग्र रूप मे नाट्यशास्त्र ईसा की छठी शती से पूर्व की रचना नहीं हो सकती–साथ ही इसके बहुत बाद की भी रचना यह नही है क्योकि नाट्यशास्त्र के जिस संस्करण पर परम् माहेश्वर अभिनवगुप्त ने आठवीं नवीं शती मे अपनी प्रसिद्ध टीका अभिनवभारती लिखी है, वह प्रस्तुत संस्करण से प्रायः अभिन्न ही है। किन्तु यह तो हुई नाट्य ाास्त्र के वर्तमान संस्करण की बात! जो विद्वान इसे छठी शती के आस पास की कृति मानते है, वे प्रायः यह भी स्वीकार करते है कि इस नाट्यशास्त्र का आधारभूत एक लघुत्तर संस्करण भी प्रारम्भ मे था– आज मूल और उसके विस्तार मे भेद करना सरल नही है, परन्तु उसके चिन्ह मिल ही जाते है । निष्कर्ष यह है कि रस सिद्धान्त का विस्तृत शास्त्रीय विवेचन मूल भरत सूत्रों मे ईसा के जन्म के एक दो शती इधर या उधर निश्चित रूप से हो चुका था।

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के दो प्रमुख अंग है– रस और अलंकार। इनमे से अलंकार का मूल आधार है व्याकरण और रस का मूल आधार है कामसूत्र। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि कामसूत्र का आधार क्या है? हमारी धारण है– अथर्ववेद । अथर्ववेद के ऋशि लौकिक जीवन की सिद्धियों को ही प्रमाण मानकर चले है; जहाँ उसमें अनेक प्रकार की भौतिक बाधाओं के निराकरण की कामना और व्यवस्था है, वहाँ इसी परिधि के अन्तर्गत एक या अनेक नारियों का प्रेम प्राप्त करने,उनकी प्रसन्नता के लिए नाना प्रकार के उपकरण जुटाने, सपत्न और सपत्नियों के विरोध का शमन करने, अभिसार आदि की सुविधायें प्राप्त करने तथा दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के उदृेश्य से भी अनेक अभिचार मन्त्रों का समावेश किया गया है। कदाचित ये ही मन्त्र कामसूत्र के उद्गम स्त्रोत है।

रस के सम्पूर्ण विवेचन का आधार है भरत का यह प्रसिद्ध सूत्र :– तत्र विभावनुभावव्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पति : '(नाट्यशास्त्र, काव्यमाला, 42 पृष्ठ 93)[1]यह वस्तुतः लक्षण नही है, यद्यपि स्वयं अभिनवगुप्त ने इसे लक्षण माना है :–

'' एवं क्रमहेतुममिधाय रसविषयं लक्षणसूत्रमाह '' इस प्रकार (उद्देश्य में) क्रम (रखने) के हेतु को बतलाकर रस विषयक लक्षणसूत्र को कहते है। (हिन्दी अभिनवभारती, पृष्ठ 442)[2]

इस सूत्र मे मूलतः रस की निष्पति का आख्यान है, स्वरूप का नहीं। परन्तु रस के स्वरूप का विवेचन भी इसी मे निहित है और आगे चलकर इसी के आधार पर उसका पल्लवन हुआ है। स्वयं भरत ने अपने मन्तव्य को इस प्रकार स्पष्ट किया है :– यथा हि नानाव्यंजनौषछिद्र व्यसंयोगाद्रनिष्पत्तिर्भवति यथा हि गुडादिर्मिर्द्रव्यैव्यंजनैरोषधिभिश्च षाडवादयो रसा निर्वर्तन्ते, तथा नानाभावोपगता अपि स्थानियो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति।[3] अर्थात् जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनो , औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से (भोज्य) रस की निष्पति होती है, जिस प्रकार गुडादि द्रव्यों, व्यंजनो और औषधियों से षाडवादि रस बनते है, उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायी भाव भी नाट्य रस रूप को प्राप्त होते है। यहॉ प्रश्न उठता है रस कौन सा पदार्थ है अथवा रस को रस क्यों कहा जाता है? उत्तर– आस्वद्य होने से, अर्थात जो आस्वाद्य हो वह रस है। जिस प्रकार नानाविध व्यंजनो से संस्कृत अन्न का उपभोग करते हुए प्रसन्नचित पुरूश रसों का आस्वादन करते है और हर्षादि का अनुभव करते हैं इसी प्रकार प्रसन्न प्रेक्षक विविध भावों एवं अभिनयों द्वारा व्यंजित – वाचिक आंगिक तथा साात्विक (मानसिक) अभिनयों से संयुक्त स्थायी भावों का आास्वादन करते है तथा हर्षादि को प्राप्त होते हैं। इसलिए नाट्य के माध्यम से आस्वादित होने के कारण ये नाट्य रस कहलाते है।

विषयगत् परिभाषा :– भरत के अनुसार नानाभावोपगत स्थायी भाव ही रस है, और स्पष्ट शब्दावली में – विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से संयुक्त एवं वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अभिनवों से व्यंजित स्थायी भाव ही रस है। अर्थात रस एक प्रकार की भावमूलक कलात्मक स्थिति है जो कवि निबद्ध विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के प्रसंग से नाट्यसामग्री के द्वारा रंगमंच पर उपस्थित हो जाती है। उदाहरण के लिए रम्य तपोवन के दृश्यों से सज्जित रंगमंच पर दुष्यन्त और शकुन्तला (विभाव) का अभिनय करने वाले नट–नटी जब वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अभिनयों के द्वारा अनुभाव, व्यभिचारी आदि की अभिव्यक्ति करते हुए रति स्थायी भाव को सर्वांगरूप मे प्रस्तुत करते हैं तो एक रमणीय,भावमूलक स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो सहृदय प्रेक्षक के चित मे हर्ष, कुतूहल आदि जागृत करती है। यह रमणीय भावमूलक स्थिति ही भरत के अनुसार रस है। सहृदय की अनुभूति इसमे भिन्न है – वह तो इसका आस्वाद है जो हर्ष, कुतूहल आदि के रूप मे अनुभूत होता है। यह स्थिति नाट्य–सौन्दर्य मात्र भी नही है– अर्थात् केवल नाट्य अलंकार और वस्तु का सौन्दर्य भी रस नही हो सकता नाट्य सौन्दर्य और काव्य सौन्दर्य के माध्यम से स्थायी भाव की उपस्थिति ही रस है।[4]

रस की यह परिभाषा विषयगत है और भरत के विवेचन पर आधृत होने के कारण मौलिक भी। ध्वनि पूर्व काल मे अलंकारवादियों ने इसे काव्य के क्षेत्र मे भी इसी रूप मे ग्रहण कर लिया और परिभाषा का रूप किंचित परिवर्तित होकर इस प्रकार बन गया– शब्द अर्थ के सौन्दर्य के माध्यम से विभाव, अनुभाव और व्यभिचारियों से संयुक्त स्थायी भाव ही रस का रूप धारण कर लेता है।

विषयिगत परिभाषा :– भरत सूत्र के व्याख्याता आचार्यों के विवेचन के फलस्वरूप रस का स्वरूप क्रमशःविषयिगत होता गया और वह 'आस्वाद्य' से आस्वाद बन गया। इस अर्थ परिवर्तन का सर्वाधिक दायित्व अभिनवगुप्त पर है। अभिनवगुप्त शैवाद्वैतवाद के प्रसिद्ध आचार्य थे। अतः उन्होने अपनी दार्शनिक मेधा के द्वारा रस विवेचन को भी शैवाद्वत सिद्धान्त के रगं मे रंग दिया। उनके अनुसार रस का अर्थ है आनन्द और आनन्द विषयगत न होकर आत्मगत ही होता है : विषय तो आत्म परामर्श या आत्मास्वाद का माध्यम मात्र है जिसके द्वारा प्रमाता संविद् विश्रान्ति लाभ करता है। यह संविद् विश्रान्ति ही आन्नद है। अतः रस नाट्यगत नहीं हो सकता नाट्य तो संविद् विश्रान्ति रूप रस का माध्यम मात्र ही हो सकता है। इस भूमिका में रस के आनन्देतर रूप की कल्पना का स्वतः ही निराकरण हो गया। अभिनवगुप्त से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक रस का यही रूप स्वीकार किया गया; व्याख्या का आधार थोड़ा बहुत बदल गया, किन्तु प्रतिपाद्य वही रहा।[5]

रस का स्वरूप :– उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार :–

1. रस आस्वादन का विषय है– किन्तु निज स्वरूप से अभिन्न रीति से, अर्थात् रस आस्वाद से अभिन्न है। रस आस्वाद–रूप है।
2. उसका आविर्भाव सत्तोगुण के उद्रेक की स्थिति में होता है।
3. वह अखण्ड है।
4. अन्य ज्ञान से रहित है।
5. स्व प्रकाशानन्द है।
6. चिन्मय है।
7. लोकोतर चमत्कारमय है।
8. ब्रह्मास्वाद सहोदर–अर्थात् ब्रह्मास्वाद के अत्यधिक समान है।

रस निश्चय ही भाव पर आश्रित है– अर्थात् भाव की भूमिका के बिना रस की स्थिति सम्भव नहीं है, संस्कृत काव्यशास्त्र इस विषय में सर्वथा निर्भ्रान्त है। भाव के स्पर्श से रहित शब्दार्थ का चमत्कार रस नहीं है – स्वयं अलंकारवादी भी इस प्रसंग में किसी प्रकार की विप्रतिपत्ति नहीं करते । वे रस को काव्य की आत्मा तो नहीं मानते–शब्दार्थ के चमत्कार का हीं अंग मानते है परन्तु रस की निष्पत्ति उन्हें भी विभाव, अनुभाव और व्यभिचारियों के संयोग से हीं मान्य है, अर्थात उनके मत से भी रस भाव पर आश्रित है।[6] अत, रस और भाव का अनिवार्य एवं अविच्छिन्न सम्बन्ध है, नाट्यशास्त्र का यह वाक्य सर्वदा प्रमाण रहा है–

न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः ।[7]

किन्तु रसानुभूति भावानुभूति से भिन्न है । किसी भी स्थिति में दोनों एक नहीं हो सकती । रस के आश्रयभूत स्थायी भाव आस्वाद की दृष्टि से सामान्यतः दो प्रकार के माने जा सकते है – रति, उत्साह, विस्मय, हास्य तथा शम का आस्वाद सुखद है और शोक, क्रोध भय तथा जुगुप्सा का आस्वाद लोक जीवन में दुखद है। यदि हम यह स्वीकार कर लेते है कि रस अनिवार्यतः आनन्द रूप है, तब तो यह सहज ही सिद्ध हो जाता है कि रसानुभूति भावानुभूति से भिन्न है, क्यों कि करूण रस की अनुभूति अंततः आनन्दमयी है और शोक की निश्चय हीं दुखमयी, वीभत्स रस अन्ततः सुखद चेतना है और जुगुप्सा दुःखद । यहाँ शृंगार, वीर, हास्य आदि के विषय में संदेह हो सकता है क्योंकि उनके तो स्थायी भावों की भी अनुभूति सुखद होती है। उदाहरण के लिए लौकिक प्रेम–प्रसंग और काव्यगत प्रेम–प्रसंग और अससे भी अधिक लौकिक हास्य प्रसंग और काव्यगत हास्य–प्रसंग की एकरूपता के विषय में निश्चय ही भ्रान्ति हो सकती है। लौकिक जीवन के प्रेम– परिहास में और साकेत में अंकित लक्ष्मण–उर्मिला के प्रेम–परिहास में क्या कोई भेद है ? सामान्यतः यही प्रतीत होता है कि दोनों में कोई भेद नहीं है। परन्तु भेद तो है ही । लौकिक जीवन में भी वास्तव में काव्य का ऐसा प्रवेश हो गया है कि प्रायः वह उसमें घुल–मिलकर एक हो जाता है और काव्य सामान्य अनुभव का अंग हीं बन जाता है। प्रेम–प्रसंगों में या हास्य–प्रसंगों में हम प्रायः जिस वाग्वैदग्ध्य का अनायास हीं प्रयोग करते रहते हैं वह वस्तुतः काव्य का हीं अंग होता है। भाव और कल्पना, शब्द और अर्थ का रमणीय सहभाव ही तो काव्य है–उसके लिए लिपिबद्ध होना अनिवार्य नहीं है। इसलिए प्रीति–संदर्भों की रमणीय उक्तियाँ शृंगार रस के अत्यन्त निकट पहुँच जाती है। क्योंकि रमणीय उक्ति ही तो काव्य है। किन्तु यहाँ भी शुद्ध शृंगार रस नहीं है क्योकि इस प्रकार के प्रसंग भी व्यक्ति की सीमाओं से परिबद्ध है, इनके स्थायी, संचारी, आलम्बन और उद्दीपन सभी विशिष्ट एवं अ–साधारणीकृत है।[8]

भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार सभी प्रकार का काव्यानन्द रस नहीं है, क्योंकि अलंकार, चित्र–काव्य आदि के चमत्कार से प्राप्त आनन्द भी काव्यानन्द के अन्तर्गत तो आता है, परन्तु वह रस नहीं है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार नाटक में प्रदर्शित रागात्मक काव्य–वस्तु का प्रेक्षण कर या श्रव्य–काव्य में वर्णित काव्य – वस्तु का मनसा साक्षात्कार कर, सहृदय का उस प्रसंग से सम्बद्ध स्थायीभाव उद्बुद्ध होकर अत्यन्त उत्कट अवस्था को प्राप्त कर लेता है, जहाँ पहुँचकर उसका चित्त काव्य–वस्तु तथा वैयक्रिक जीवन के

अनुभवों को भूल कर एक अखंड आनंदमयी चेतना में लीन हो जाता है जिसका नाम रस है, अतः 'रस' एक आनंदमयी चेतना है, जिसका आधार अनिवार्यतः रागात्मक होता है, क्योंकि इधर तो उसकी प्रेरक काव्य वस्तु रागात्मक होती है और उधर वह स्वयं किसी मनोराग की चरम उद्दीप्ति का परिणाम होती है। भारत का रस सिद्धान्त, जैसा कि प्रसाद जी ने स्पष्ट किया है, शैवदर्शन पर आधृत है, अतः उसका स्वरूप भी तदनुकूल आत्मानन्द– प्रधान हीं है। भारतीय काव्यशास्त्र का शैवाचार्य अभिनव– प्रतिपादित प्रायः सर्वमान्य अभिव्यक्तिवाद सिद्धान्त अत्यन्त भावात्मक रस की ही स्थापना करता है। यह रस शोकादि भावों के उन्नयन से भी आगे आत्मानन्द का भोग है – यह शान्ति रूप नहीं है, भोग–रूप है। कलाजन्य चमत्कार, भावों की परिष्कृति आदि उसकी सहायक अथवा आनुषंगिक उपलब्धियां है – वह स्वयं उनसे कहीं उपर है। भारत के अन्य सिद्धान्तों की भाँति, उसका रस– सिद्धान्त भी अध्यात्मवाद पर आधृत है । उसको यथावत ग्रहण करने के लिये आत्मा की स्थिति और उसकी सहज आनन्द–रूपता में विश्वास करना आवश्यक है। आधुनिक आलोचकों में आचार्य केशव प्रसाद मिश्र, पं0 रामदहिन मिश्र डॉ0 भगवान दास, डॉ0 श्यामसुन्दर दास, डॉ0 गुलाब राय, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सभी रस को आनन्द स्वरूप हीं मानते है और इन्होने नवीन ज्ञान–विज्ञान के प्रकाश में, उसकी अलौकिकता एवं आनन्दरूपता का अपने–अपने ढंग से व्याख्यान किया है। इस प्रसंग में केवल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ही प्रबल अपवाद हैं – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, जो भारतीय शास्त्र– परंपरा, विशेषतः रसवाद के अत्यंत समर्थ पोषक होते हुए भी, रस की आनन्दरूपता का स्पष्ट विरोध करते हैं । काव्यालोचन में भी कहा गया है कि – ''काव्य से सहृदय का हृदय – सागर उमड़ आता है। इस उमड़ते हृदय–सागर में जब सहृदय तन्मय हो जाता है तब उसकी तदाकार कृति में जो निहित आनन्द है उसे हीं संस्कृत ग्रन्थकारों ने रस कहा है।''उपर्युक्त विवेचन के फलस्वरूप निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते है[9] :–

1. रस आनन्दरूप है। आनन्द के दो रूप है : क) उदात्त आत्मविश्रान्ति और (ख) आह्लाद या मनः प्रीति–सहृदय मनः प्रीतये । एक तीसरा रूप भी है मनोरंजन जो आज 'एण्टरटेनमेंट' का पर्याय होकर हीनतर अर्थ का वाचक बन गया है। किन्तु काव्य और कला के साथ उसका सनातन संबंध रहा है। इन तीनों रूपों में प्रीति तत्व सामान्य है। अर्थात् रस चाहे उदात आत्म विश्रान्ति रूप हो, चाहे मन, प्रीति या आह्लाद अथवा अन्तश्चमत्कार रूप हो या और भी निम्नस्तर पर मनोरंजन रूप हो प्रत्येक स्थिति में वह प्रीतिकर या सुखात्मक है।
2. रस सुखात्मक भी है और दुःखात्मक भी–अर्थात् प्रीतिकर स्थायी भावों पर आश्रित शृंगार,वीर, ान्त आदि का स्वरूप सुखात्मक और अप्रीतिकर स्थायी भावों पर आश्रित करुणा भयानक वीभत्स आदि का स्वरूप दुःखात्मक होता है।[10]
3. रस उभयात्मक है अर्थात सुखदुःखमयी मिश्र अनुभूति है, सभी स्थायी भावों में सुख दुख का विभिन्न अनुपातों में मिश्रण रहता है जो उन पर आश्रित रसों में भी प्रतिफलित होता है।
4. रस न सुखात्मक है और न दुखात्मक – रसदशा हृदय की मुक्तावस्था का नाम है जिसमें वैयकिक रागद्वेष और उनके परिणामी सुख–दुःख सर्वथा निश्शेष हो जाते है । रस की अनुभूति चित के वै ाद्य की, एक प्रकार से शान्ति की अनुभूति है।
5. रस (काव्यास्वाद) सरल अनुभूति नहीं है– उसमें अनेक, प्रायः परस्पर विरोधी, अन्तःवृतियों का सूक्ष्म संतुलन रहता है, अतः वह अत्यन्त वैविध्यपूर्ण अनुभव है।[11]

भारतीय काव्यशास्त्र में रससूत्र के प्रमुख व्याख्याताओं में चार आचार्य है जिनके नाम और मत इस प्रकार है ।[12]

रस का नाम	स्थायी भाव
1. भट्ट लोल्लट	उत्पतिवाद
2. आचार्य शंकुक	अनुमितिवाद
3. भट्टनायक	भुक्तिवाद
4. अभिनवगुप्त	अभिव्यक्तिवाद

रस का महत्व :– रस को काव्य की आत्मा या प्राणतत्व माना गया है। रसहीन काव्य निर्जीव है, अत रस के बिना काव्य का अस्तित्व ही नही है। जैसे प्राण के अभाव में शरीर व्यर्थ है, उसी प्रकार रस के अभाव में कोई रचना काव्यत्व से ही रहित हो जाती है। रस ही कविता को प्राणवान बनाता है और वही पाठक या श्रोता को आनंदमग्न करके भाव समाधि में पहुँचा देता है। अतः रस को काव्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना जा सकता है। यह काव्य का अन्तरंग तत्व है बहिरंग तत्व नहीं । अतः अलंकार आदि की भाँति यह काव्य की शोभा नहीं बढ़ाता, अपितु शोभा उत्पन्न करता है। काव्य के अन्य सभी तत्व रस के ही उपादान है । अंतः निर्विवाद रूप में रस ही काव्य का सर्वप्रमुख तत्व है। रस और उनके स्थायी भाव[13] –

1. श्रृंगार	रति	
2. वीर	उत्साह	
3. रौद्र		क्रोध
4. वीभत्स		जुगुप्सा (घृणा)
5. अद्भुत		विस्मय
6. शान्त	निर्वेद	
7. हास्य	हास	
8. भयानक		भय
9. करुण		शोक

इनके अतिरिक्त दो रसों की चर्चा और होती है

10. वात्सल्य	सन्तान विषयक रति
11. भक्ति	भगवद् विषयक रति

स्थायी भावों की संख्या नौ हीं मानी गई है , अतः मूलतः 'नवरस' ही माने गए है।[14] श्रृंगार रस को रसराज माना गया है।

साधारनीकरण का सिद्धान्त :– रस सिद्धान्त में में साधारणीकरण का विशेष महत्व है। वस्तुतः साधारणीकरण के बिना रसानुभूति हो ही नही सकती ।[15] इस सिद्धान्त का आविष्कार करने का श्रेय रससूत्र के व्याख्याता आचार्य भट्ट नायक को है। साधारनीकरण का अर्थ है सामान्यीकरण (Generalisation) । इस प्रक्रिया में विभावादि का विशेषत्व समाप्त हो जाता है और वे सामान्य प्रतीत होने लगते हैं, अर्थात् शकुन्तला, शकुन्तला न रहकर कामिनी मात्र रह जाती है। रंगमंच पर यशोदान्कृष्ण के प्रसंग में यशोदा कृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव का अनुभव करती है। इस नाटक को देखनेवाले दर्शक भी कृष्ण की चेष्टाओं को देखकर वात्सल्य का अनुभव करते है। दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि काव्य में वर्णित आश्रय (यशोदा) के साथ दर्शक (सामाजिक) की अनुभूति का तादात्म्य हो जाता है। साथ ही कृष्ण केवल यशोदा के पुत्र न रहकर सबको अपने पुत्र प्रतीत होते हैं अर्थात सबके वात्सल्य भाव का आलम्बन बन जाते है। इसी प्रक्रिया को साधरनीकरण कहते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. नाटयशास्त्र काव्यमाला 92 पृ093
2. हिन्दी अभिनव भारती पृ0 442
3. नाट्य शास्त्र काव्यमाला पृ0 93
4. रस सिद्धान्त डा0 नागेन्द्र पृ0 91
5. रस सिद्धान्त डा0 नागेन्द्र पृ0 90
6. रस सिद्धान्त डा0 नागेन्द्र पृ0 10

7. रस सिद्धान्त डा0 नागेन्द्र पृ0 101

8. हिन्दी अभिनव भारती पृ0 420

9. रस सिद्धान्त डा0 नागेन्द्र पृ0 219

10. रस सिद्धान्त डा0 नागेन्द्र पृ0 210

11. हिन्दी अभिनव भारती पृ0 148

12. हिन्दी अभिनव भारती पृ0 321

13. काव्यप्रका ा.पृश्ठ 228

14. काव्यप्रका ा.पृश्ठ 230

15. काव्यप्रका ा.पृश्ठ 234